|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 18: मोक्षसंन्यासयोग

1/6 (श्लोक 1-6), शनिवार, 19 जुलाई 2025

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/0uyCtHirizQ

श्रीभगवान् द्वारा कर्म की व्याख्या

सुमधुर प्रार्थना, दीप प्रज्वलन, श्रीहनुमान चालीसा पाठ तथा गुरु वन्दना के साथ आज के सत्र का शुभारम्भ हुआ।

श्रीभगवान् की अतिशय मङ्गलमय कृपा से हमारा ऐसा धन्यभाग्य जागृत हुआ है कि हम अपने जीवन को सार्थक करने के लिए, सफल करने के लिए तथा इसे इसके परमोच्च लक्ष्य तक पहुँचने के लिए, इहलोक तथा परलोक का कल्याण करने के लिए श्रीमद्भगवद्गीता में प्रवृत्त हो गये हैं। हम इसके महत्त्व को जान रहे हैं, इसके श्लोकों का अभ्यास कर रहे हैं। अनेक साधक इसे कण्ठस्थ भी कर रहे हैं, कोई विवेचन के सूत्रों को जीवन में अपनाने का प्रयास भी कर रहे हैं तथा चतुर्थ-धाम (स्तर-4) की यात्रा में आगे पहुँचते-पहुँचते हम बहुत प्रयास से श्रीमद्भगवद्गीता का अभ्यास करने में लग गए हैं। पता नहीं हमारे कोई इस जन्म के पुण्य-कर्म हैं, हमारे पूर्वजन्मों के कोई सुकृत हैं, हमारे पूर्वजों के कोई सुकृत हैं या फिर किसी जन्म में किसी सन्त महात्मा की कृपादृष्टि हम पर हो गयी, जिस कारण हमारा ऐसा भाग्योदय हो गया जो हम सब श्रीमद्भगवद्गीता के लिए चुन लिये गये हैं। हमारे मन में यह परम विश्वास होना चाहिये कि हमने श्रीमद्भगवद्गीता को नहीं चुना है, अपितु श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ने के लिये हम चुने गये हैं। यह विश्वास जितना प्रबल होगा, श्रीमद्भगवद्गीता की कृपा हमें अनुभव होती जाएगी।

आज अट्ठारहवें अध्याय का विवेचन किया जा रहा है। सन्त ज्ञानेश्वर महाराज ने इस अध्याय को **एक-अध्यायी गीता** कहा है, क्योंकि इस एक अध्याय को ठीक से समझ लिया तो पूरी श्रीमद्भगवद्गीता का मर्म ध्यान में आ जाता हैं।

एक बार एक व्यक्ति को प्रातःकाल पाँच बजे की रेलगाड़ी से कहीं जाना था। उसने विचार किया कि वह चार बजे घर से निकल जाएगा। संयोगवश उस दिन उसके कमरे की घड़ी की बैटरी धीमी पड़ गयी थी, परन्तु उसे यह बात पता नहीं थी। घड़ी धीरे-धीरे चल रही थी। जब घड़ी के काँटे चार पर पहुँचे तो उसने सोचा कि चार बज गए हैं, अभी निकलना चाहिये परन्तु वास्तव में साढ़े चार बज गए थे और उसे समय का अनुमान नहीं हो पाया था। उसने रिक्शा वाले से कहा कि पाँच बजे की ट्रेन है। रिक्शा वाले ने कहा कि अब तो साढ़े चार बज गए हैं। उसने मोबाइल में देखा तो साढ़े चार बज गए थे। वह तीव्र गति से स्टेशन की ओर रवाना हुआ। प्लेटफार्म पर जैसे-तैसे पहुँचा तो देखा कि रेलगाड़ी चलने के लिये तैयार थी। सीढ़ियाँ उतरकर भागते हुए वह अन्तिम डिब्बे में चढ़ गया और ठण्डी साँस लेकर बोला-

"अच्छा हुआ! अन्ततः रेलगाड़ी पकड़ में आ ही गई।"

जिस प्रकार अन्तिम डिब्बे को पकड़ने से रेलगाड़ी मिल जाती है, उसी प्रकार यदि अभी तक कुछ अध्याय छूट भी गये होंगे, कुछ-कुछ बातें रह भी गई होंगी तो भी इस अन्तिम अट्ठारहवें अध्याय का विवेचन ठीक से सुन लेंगे तो पूरी श्रीमद्भगवद्गीता समझ में आ

जाएगी।

अट्ठारह का अङ्क भी अत्यन्त विशिष्ट अङ्क है। यह संयोग नहीं है कि हमारे पुराण अट्ठारह हैं। महाभारत में अट्ठारह पर्व हैं। महाभारत का युद्ध भी अट्ठारह दिन हुआ था। गीताजी के भी अट्ठारह अध्याय हैं। हमारे यहाँ सङ्ख्या की दृष्टि से नौ का बहुत महत्त्व है इसलिए माला में एक सौ आठ मनके होते हैं।

बड़े सन्त महात्मा **"श्री श्री 1008"** ऐसा लिखते हैं।

हमारे यहाँ नौ पूर्णांक माना गया है। अट्ठारह में एक और आठ का योग करने से नौ प्राप्त होता है, एक सौ आठ में भी योग नौ ही होता है तथा एक हज़ार आठ के अङ्कों का योग करने से भी नौ ही प्राप्त होता है। गणित में नौ को जादुई अङ्क माना जाता है। इसका कारण है कि नौ का पहाड़ा विशेष है। इसकी सभी सँख्याओं के गुणनफल का योग नौ ही आता है। हमारे यहाँ नौ और अट्ठारह पर बहुत सारी बातें आधारित हैं इसलिए सारी मुख्य बातें नौ, अट्ठारह, एक सौ आठ, एक हज़ार आठ आदि पर आधारित होती हैं। ग्रह भी नौ होते हैं इसलिए नवग्रह पूजन होता है।

यह अध्याय सम्पूर्ण श्रीमद्भवद्गीता का सार कहा गया है क्योंकि इस अध्याय में श्रीभगवान् ने कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग तथा ध्यानयोग, चारों का विश्लेषण कर दिया है।

बारहवें अध्याय के प्रथम श्लोक में अर्जुन ने इसी प्रकार का प्रश्न किया था। अर्जुन ने पूछा कि "ज्ञान और भक्ति में क्या श्रेष्ठ है? मुझे ज्ञानयोग करना चाहिए अथवा भक्तियोग करना चाहिए? सगुण और निर्गुण उपासना में से मेरे लिये कौन सी श्रेष्ठ है?" श्रीभगवान् ने उसका उत्तर दे भी दिया और फिर बारहवें श्लोक में श्रीभगवान् ने उसका तुलनात्मक विश्लेषण किया तो बता दिया-

त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्

अर्थात् त्याग से तत्काल शान्ति प्राप्त होती है। अब अर्जुन के मस्तिष्क में एक और प्रश्न उठा कि मैं भी तो त्याग की बात कर रहा था। मैं भी तो कह रहा था कि युद्ध का त्याग करके भाग जाता हूँ। आप मुझे भागने नहीं दे रहे हैं। अर्जुन के मस्तिष्क में "त्याग" और "संन्यास", ये दो शब्द बार-बार आ रहे हैं इसलिए श्रीभगवान् भी बार-बार इन दोनों शब्दों का उल्लेख कर रहे हैं।

सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता में त्याग शब्द का प्रयोग बीस बार किया है और चौदह बार संन्यास शब्द का प्रयोग किया है। अर्जुन ने यहीं से आरम्भ किया है कि मैं युद्ध भूमि छोड़ कर भाग जाना चाहता हूँ। जङ्गल में रहकर भिक्षा माँग कर संन्यासी बनना चाहता हूँ तो श्रीभगवान् ने भी श्रीमद्भगवद्गीता में त्याग तथा संन्यास का विस्तृत विश्लेषण किया है।

अब अर्जुन का मस्तिष्क पुनः संन्यास और त्याग में उलझ रहा है। उन्हें लग रहा है कि श्रीभगवान् ने ध्यानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, श्रद्धात्रयविभागयोग बता दिया। ऐसा न हो कि श्रीभगवान् अपनी बात यहीं पर पूर्ण कर दें। अर्जुन ने विचार किया कि श्रीभगवान् अपनी बात पूर्ण करें, इससे पहले मैं अपना प्रश्न पूछ लूँ। अध्याय का आरम्भ अर्जुन के प्रश्न से हुआ है।

प्रश्नकर्ता तीन प्रकार के होते हैं-

1. कुछ प्रश्नकर्ता वक्ता के ज्ञान की परख करने के लिए आते हैं।

2. कुछ प्रश्नकर्ता अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए प्रश्न करते हैं।

3. जो उत्तम प्रश्नकर्ता होते हैं, वे यह जानने के लिए प्रश्न करते हैं कि मैं इसे अपने जीवन में कैसे अपना सकता हूँ? मुझे क्या करना चाहिए?

श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन के समस्त प्रश्न तृतीय श्रेणी के हैं तथा इस बात पर आधारित हैं कि मुझे क्या करना है और कैसे करना है? अर्जुन ने द्वितीय अध्याय के सप्तम् श्लोक में भी यही कहा है-

"यच्छ्रेयः"

अर्थात् "जिसमें मेरा श्रेय है, वह मुझे बताईए-

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।

मैं आपका शिष्य हूँ, आप मुझे बताईए।"

युद्धभूमि है, पैन्तालीस मिनट के संवाद में अर्जुन बार-बार अपने मस्तिष्क में उठने वाले सभी प्रश्न पूछ रहे हैं, क्योंकि वे उन्हें अपने जीवन में अपनाना चाहते हैं और श्रीभगवान् उनकी समस्त शङ्काओं का निवारण प्रसन्नता से मुसकुराते हुये कर रहे हैं।

18.1

अर्जुन उवाच
सन्न्यासस्य महाबाहो, तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश, पृथक्केशिनिषूदन॥18.1॥

अर्जुन बोले - हे महाबाहो ! हे हृषीकेश ! हे केशिनिषूदन ! (मैं) संन्यास और त्याग का तत्त्व अलग-अलग जानना चाहता हूँ।

विवेचन- अर्जुन प्रथम प्रश्न पूछते हैं। साधारण रूप से यह प्रश्न मात्र इतना ही है-

हे महाबाहो! हे अन्तर्यामी! हे वासुदेव! मैं संन्यास और त्याग के तत्त्व को पृथक-पृथक जानना चाहता हूँ।

हम स्वयं अध्ययन करेंगे तो इतना ही प्रश्न समझ पाएँगे किन्तु यदि हम सन्तों, महापुरुषों को इस श्लोक का विवेचन करते हुए सुनते हैं तो देखते हैं कि उन्होंने इसका बहुत अधिक विस्तार किया है। अर्जुन के मस्तिष्क में इस समय तृतीय अध्याय का श्लोक आ रहा है जहाँ श्रीभगवान् ने कहा है-

न च सन्न्यसनादेव, सिद्धिं(म्) समधिगच्छति॥3:4॥

अर्जुन के मस्तिष्क में यह बात बैठी हुई है कि मैं तो यही चाहता हूँ।

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।

ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥

श्रीभगवान् ने कहा-

’हे निष्पाप अर्जुन! इस लोक में दो प्रकार की निष्ठा की बात मेरे द्वारा कही गयी है। उनमें से साङ्ख्ययोगियों की निष्ठा ज्ञानयोग से तथा कर्मयोगियों की निष्ठा कर्मयोग से होती है।

आगे श्रीभगवान् कहते हैं-

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।

न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ।।

मनुष्य कर्मों का आरम्भ किए बिना योगनिष्ठा को प्राप्त नहीं होता है और कर्मों का त्याग करने से ही वह साङ्ख्यनिष्ठा अर्थात संन्यास को प्राप्त होता है।

अब अर्जुन को समझ में आ रहा है कि त्याग तथा संन्यास पृथक-पृथक बातें हैं। यह श्रीमद्भगवद्गीता का एकमात्र श्लोक है जहाँ पर अर्जुन ने श्रीभगवान् को तीन सम्बोधन किए हैं। दो सम्बोधन तो और भी दो श्लोकों में आते हैं किन्तु एक व्यक्ति को तीन सम्बोधन किए गए हों, ऐसा यह एकमात्र श्लोक है।

केशिनिषूदन

अर्जुन ने श्रीभगवान् को पहला सम्बोधन **केशिनिषूदन** किया। श्रीभगवान् ने केश नामक राक्षस का वध किया था जो घोड़े का रूप रखकर श्रीभगवान् के समक्ष आया। उस महा-भयङ्कर अश्व को श्रीभगवान् ने अपने बाहुबल से परास्त किया है। घोड़ा शक्ति का प्रतीक है। हमारे यहाँ शक्ति की माप करने की ईकाई अश्व-शक्ति होती है। घर में पानी चढ़ाने वाले पम्प को बोलते हैं कि डेढ़ या दो हॉर्सपावर (अश्वशक्ति) की मोटर है। इसका अर्थ है कि इस मोटर में दो घोड़ों की शक्ति है। इतने शक्तिशाली अश्व का श्रीभगवान् ने अपने हाथों से मर्दन किया है।

महाबाहो-

महाबाहो का अर्थ है अत्यन्त बलशाली, बाहुबली। इतने शक्तिशाली अश्व को भी अपने बाहुबल से मार डालने वाला, इसलिए अर्जुन ने श्रीभगवान् को महाबाहो नाम से पुकारा है।

हृषीकेश-

हृषि+केश का अर्थ है अन्तर्यामी अर्थात् जिसका अपने मन और इन्द्रियों पर सम्पूर्ण नियन्त्रण है। जिसने अपने मन पर विजय प्राप्त कर ली है, वह समस्त जग पर भी विजय प्राप्त कर लेता है। हम सब अपने मन के वश में होते हैं, जबकि श्रीभगवान् का मन उनके वश में है इसलिए उन्हें योगेश्वर कहा जाता है।

अर्जुन ने श्रीभगवान् को प्रसन्न करने के लिए तीन उपाधियों से विभूषित किया और कहा-

"हे महाबाहो! हे हृषीकेश! हे केशिनिषूदन वासुदेव! मैं संन्यास तथा त्याग को पृथक-पृथक तत्त्वतः जानना चाहता हूँ।"

सामान्य रूप से त्याग तथा संन्यास एक जैसे ही प्रतीत होते हैं। हम समझते हैं कि जिसने संसार का त्याग किया, वह त्यागी महात्मा संन्यासी हो जाते हैं। त्याग का अर्थ है किसी बात को छोड़ना तथा संन्यास का अर्थ है उस त्याग की वृत्ति का स्थिर हो जाना।

हमारे यहाँ हजारों उपनिषद हैं। उनमें से एक सौ आठ उपनिषद मुख्य माने गये हैं। उनमें से भी दस उपनिषद, जिनका भाष्य शङ्कराचार्य भगवान् ने किया, वे प्रधान उपनिषद माने गये। सबसे छोटा उपनिषद **ईशावास्य उपनिषद** है। इसका प्रथम श्लोक है-

ॐ ईशावास्यमिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

इस श्लोक की द्वितीय पङ्क्ति का यहाँ चिन्तन करेंगे। उपनिषदों में जितनी सूक्तियाँ हैं, उनमें यह सर्वाधिक शक्तिशाली सूक्ति मानी गयी है। उपनिषदकार कहते हैं, "सारे भोगों का त्याग करके उसका उपयोग करो।"

गृधः का अर्थ है गिद्ध-

जिसकी दृष्टि की विशेषता है कि आकाश में कई किलोमीटर उड़ते हुए भी वह भूमि पर पड़े किसी मृत प्राणी को ढूँढ लेता है तथा आकर उसे ग्रहण करता है। कई किलोमीटर दूर होने पर भी उसकी दृष्टि मृत शरीर के सड़े हुए माँस पर होती है। इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति जीवन में अत्यन्त ऊँचाई पर पहुँच जाता है फिर भी उसकी दृष्टि भोगों पर ही होती है।

हम श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ रहे है, साधना, जप, ध्यान आदि करते हैं, किन्तु हमारी दृष्टि भी भोगों पर ही रहती है। हमें अपनी दृष्टि ठीक रखनी है। उपनिषदकार कहते हैं कि भोगों पर गिद्ध-दृष्टि न रखो। वे यह भी नहीं कहते हैं कि उसका उपभोग न करो, अपितु त्याग के द्वारा उपभोग करो। यहाँ यह भी विचारणीय है कि त्याग के द्वारा उपभोग कैसे हो सकता है?

"मैं आज से चाय का सेवन नहीं करूँगा।" यह सामान्य रूप से आरम्भिक त्याग है। "मैं आज से एक सप्ताह के लिए या एक माह के लिए मिष्ठान्न ग्रहण नहीं करूँगा" यह भी त्याग है। जो बात या जो वस्तु मुझे अत्यन्त प्रिय है, अपने मन पर नियन्त्रण करके उसका त्याग कर दूँ तो यह त्याग है। संन्यासी वह है जिसे उन सबमें रस ही नहीं है।

इसे एक छोटे उदाहरण से समझने का प्रयास करेंगे। जब हम छोटे बालक थे, तब हम खिलौनों से खेलते थे। अनेक बार उन खिलौनों से इतनी अधिक प्रीति हो जाती थी कि उन खिलौनों के लिए अपने भाई-बहनों तथा मित्रों से झगड़ा कर लेते थे। अनेक बार तो ऐसा

लगता था कि यदि यह खिलौना नहीं मिला तो मैं अपने प्राण ही दे दूँगा। अक्सर बच्चे माँ से कहते हैं कि माँ बस यह खिलौना दिलवा दीजिये, इसके बाद कभी कुछ नहीं माँगूगा। एक माँग पूरी होते ही हमारी दूसरी माँग आरम्भ हो जाती है और यह सूची कभी पूरी नहीं होती है। जिस खिलौने के लिए उस समय हम अपने प्राण तक देने के लिए तैयार हो जाते थे, कुछ वर्षों बाद उस खिलौने की ओर देखते भी नहीं हैं। उस समय जिस खिलौने में हमारी रुचि समाप्त हो गई, उसका त्याग किया तो वह त्याग नहीं है।

त्यागी को त्याग करना पड़ता है,

संन्यासी को रुचि समाप्त करनी पड़ती है।

ऐसा नहीं है कि वह जलेबी नहीं खाएगा, उसे जलेबी छोडने की आवश्यकता ही नहीं है बल्कि उसे इन सब वस्तुओं से कोई अन्तर नहीं पड़ता है। पूज्य स्वामीजी महाराज जैसे महात्मा को चाहे विमान में बैठकर यात्रा करनी पड़े या चार्टेड में, उत्तम पकवान खिलाएँगे या दलिया खिला देंगे, उन्हें इसमें कोई अन्तर ही महसूस नहीं होता है। हम जैसे साधारण व्यक्तियों के लिए इसमें बहुत अन्तर होता है इसलिए हम कहते हैं कि हम आजकल मिष्ठान्न पर नियन्त्रण कर रहे हैं। सन्त महात्मा कुछ भी खाते हैं तो उसके उपरान्त उसे याद नहीं करते। हम जिन भोगों में फँसते हैं, उनकी याद करते हैं, उस याद के कारण उसका त्याग करने की इच्छा होती है। हम साधना करते हैं तो सोचते हैं कि सभी भोगों से मन हटाएँ, क्योंकि हमारी बुद्धि वहाँ फँसी होती है। त्याग और संन्यास में यही अन्तर है। त्याग में वस्तु की कामना रहती है, किन्तु स्थूल रूप से उसका त्याग होता है। संन्यास में उस वस्तु की कामना समाप्त हो जाती है।

पूज्य स्वामीजी की दस वर्ष पूर्व की एक आश्चर्यजनक घटना है। उन्हें किसी स्थान पर रेलगाड़ी से जाना था। संयोगवश अन्त समय तक उसमें सीट उपलब्ध नहीं हो पायी। जाना अनिवार्य था, अतः उनसे कहा गया कि आप रेलगाड़ी में चढ़िए, हम कुछ व्यवस्था करते हैं। उस दिन अत्यन्त भीड़ थी तथा बैठने का भी स्थान नहीं था। जब कोई व्यवस्था नहीं हो पायी तो स्वामीजी शौचालय के निकट रेलगाड़ी के फर्श पर ही बैठ गये। उनके सेवक अत्यन्त दुःखी हो गये। स्वामीजी ने बताया कि वे उस स्थिति में भी अत्यन्त आनन्द में थे कि आज परमात्मा मेरी परीक्षा ले रहे हैं। मैं उस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया हूँ, क्योंकि मेरे मस्तिष्क में एक क्षण के लिए भी यह विचार नहीं आया कि पहले से क्यों नहीं देखा गया या पहले से कोई व्यवस्था क्यों नहीं की गई? यह स्थिति संन्यास की है। भोगों में आपत्ति नहीं है अपितु उसमें जो मन रमता है, उसमें आपत्ति है।

अर्जुन के द्वारा सुन्दर प्रश्न करने पर श्रीभगवान् अत्यन्त प्रसन्न हो गए। श्रीभगवान् को ऐसे श्रोता बहुत प्रिय होते हैं जो इतनी गहन बात पूछते हैं।

18.2

श्रीभगवानुवाच
काम्यानां(ङ्) कर्मणां(न्) न्यासं(म्), सन्न्यासं(ङ्) कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं(म्), प्राहुस्त्यागं(म्) विचक्षणाः॥18.2॥

श्रीभगवान् बोले - (कई) विद्वान् काम्य कर्मों के त्याग को संन्यास समझते हैं (और) (कई) विद्वान् सम्पूर्ण कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहते हैं। कई विद्वान ऐसा कहते हैं कि कर्मों को दोष की तरह छोड़ देना चाहिये और कई विद्वान ऐसा (कहते हैं कि) यज्ञ, दान और तपरूप कर्मोंका त्याग नहीं करना चाहिये। (18.2-18.3)

विवेचन- कवि का संस्कृत अर्थ कविता करने वाला नहीं होता अपितु अत्यन्त विद्वान, पण्डित, त्रिकालज्ञ होता है। श्रीभगवान् कहते हैं, "अर्जुन! पण्डितजन काम्य कर्मों के त्याग को संन्यास समझते हैं और दूसरे विचारशील पुरुष सब कर्मों के फल के त्याग को संन्यास समझते हैं। यहाँ श्रीभगवान् ने **काम्य कर्म** शब्द का प्रयोग किया है। हमें यहाँ कर्म को समझना पड़ेगा। इसका तात्पर्य है कि कर्मों के भी अनेक प्रकार हैं।

इसे हम एक स्लाइड के माध्यम से जानेंगे-

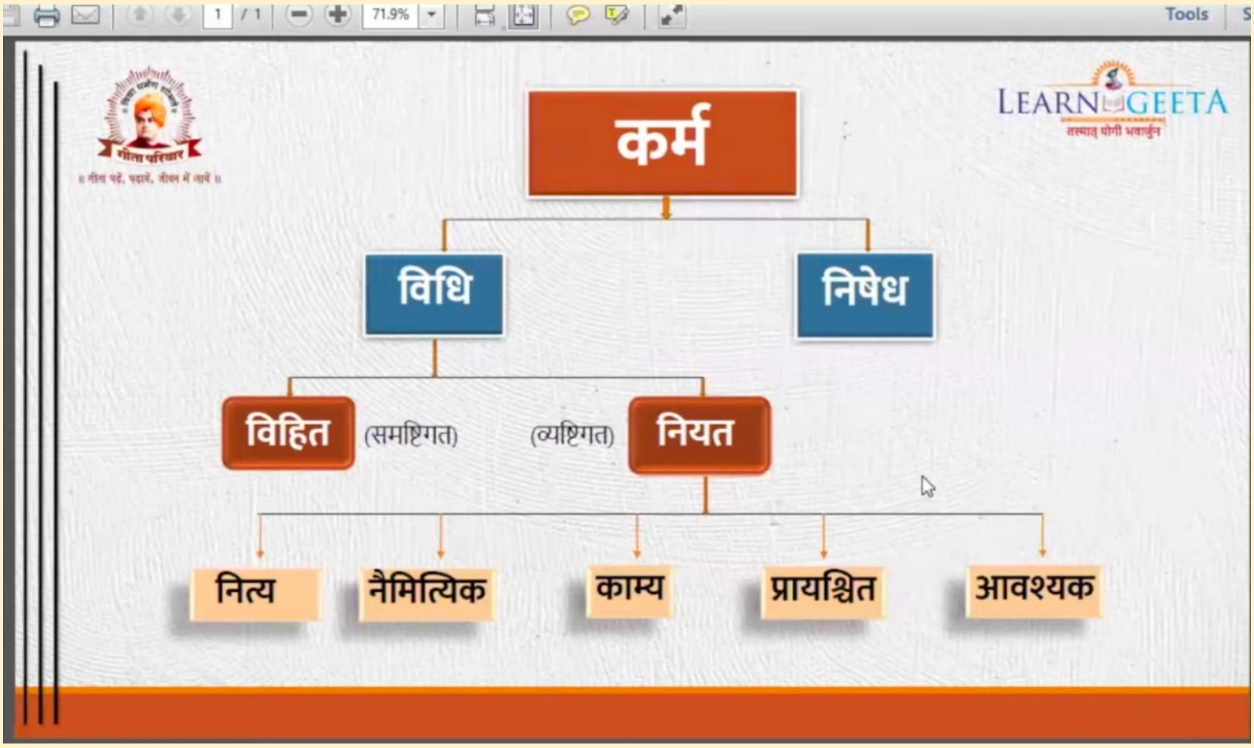

मूलतः दो प्रकार के कर्म होते हैं- **विधि कर्म, निषिद्ध कर्म**

विधि कर्म- करने योग्य कर्म।
निषिद्ध कर्म- नहीं करने योग्य कर्म।

हम यहाँ करने योग्य विधिकर्म की ही बात करते हैं। करने योग्य विधिकर्म दो प्रकार के होते हैं - **विहित कर्म और नियत कर्म**।

विहित कर्म का अर्थ है समष्टिगत अर्थात् ऐसा होना चाहिए। जैसे पुत्रवधू को अपने सास-श्वसुर की सेवा करनी चाहिए, पुत्र को माता-पिता की आज्ञा माननी चाहिए आदि। **नियत कर्म** का अर्थ है व्यष्टिगत, अर्थात् मैं यह करूँ। जैसे मुझे सुबह छः बजे श्वसुर जी को चाय देनी है।

एक आयोजन का निर्णय- यह विहित कर्म है। उस आयोजन में मैं जो कार्य करूँगा, वह मेरा नियत कर्म है।

नियत कर्म पाँच प्रकार के होते हैं- नित्य कर्म, नैमित्यिक कर्म, काम्य कर्म, प्रायश्चित कर्म तथा आवश्यक कर्म।

1. **नित्य कर्म-** अपने जीवन के उन्नयन के लिए हमने जो कर्म नित्य का नियम लेकर किए, जैसे मैं प्रतिदिन तीन माला का जप करूँगा। नित्यकर्म में तीन बातों का ध्यान रखना चाहिए। यह समय साध्य होना चाहिए, बल साध्य होना चाहिए, धन साध्य होना चाहिए।

ऐसा नित्य नियम लेना नहीं चाहिए जिससे किसी को असुविधा हो। कभी-कभी व्यक्ति ऐसे नियम ले लेते हैं कि मैं चार बजे उठकर शङ्ख बजाऊँगा, मैं सङ्गीत का अभ्यास करूँगा और सुबह चार बजे माइक लगा कर हारमोनियम बजा कर गाऊँगा। इससे आपके घर वालों तथा पड़ोसियों, सभी को असुविधा होगी। हमारे समाज में एक माला प्रतिदिन करने वाले व्यक्ति भी हैं और चालीस वर्ष से एक लाख से दो लाख नामजप करने वाले व्यक्ति भी हैं।

महापुरुषों ने बताया कि जो भी नित्यकर्म लेना हो, वह जितना करना चाहते हैं, उससे कम लेना चाहिए। अर्थात् नित्य कर्मों में जो भी नियम लें, वह छूटे नहीं, क्योंकि उन नियमों के भङ्ग होने पर प्रायश्चित करना पड़ता है, नहीं तो दोष लगता है।

नित्य नियम आसान होने चाहिए। जैसे पहली रोटी गाय की, आखिरी रोटी कुत्ते की। हमारी नित्य साधना, माता-पिता, पति, गुरु को प्रणाम करना, प्रातः स्मरण, गीताजी का पारायण आदि नित्य नियम हैं। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में नियम होने चाहिए। हमें एक भी

ऐसे महापुरुष नहीं मिलेंगे जिनके जीवन में कोई नियम न हों।

श्रद्धेय ब्रह्मलीन सेठ जयदयाल जी गीताप्रेस के संस्थापक थे। वे नियमों के बड़े आग्रही थे और बहुत बड़े महापुरुष थे। उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी। विवेचक ने अपना एक व्यक्तिगत अनुभव साझा किया। उन्हीं के शब्दों में-

"मुझे भी नियमों का आग्रह रहा है। मेरे एक घनिष्ठ मित्र हैं। जब हम छोटे थे, तब ऋषिकेश जाया करते थे। एक पुस्तक में कुछ छपा था तो मेरा मित्र वह पुस्तक लेकर मेरे पास आया और बोला कि तुम्हें नियम बहुत पसन्द हैं न, देखो सेठजी ने भी ऐसी बात लिखी है। उसने अपनी अङ्गुली से ढक कर आधी पँक्ति मुझे पढ़ाई। बोला कि देखो सेठजी ने लिखा है कि साधक को छोटे-छोटे नियम बनाने चाहिए। मैं प्रसन्न हो गया कि देखो सेठजी ने मेरे मन की बात कह दी। वास्तव में वह बात मैंने भी सुन कर, पढ़ कर ही अपनाई थी। फिर उसने अङ्गुली हटा कर आगे पढ़ने के लिए कहा। जब मैंने आगे पढ़ा तो मैं काँप गया। सेठजी ने कहा था कि साधक को छोटे-छोटे नियम बनाने चाहिए और प्राण देकर भी उनकी रक्षा करनी चाहिए। हम चाहे प्राण देकर उनकी रक्षा न करें, किन्तु प्रायश्चित करके तो करनी चाहिए।

हमारे गीतासेवी जब सेवा देना आरम्भ करते हैं तो उनका नियम बन जाता है कि निश्चित समय पर उस सेवा हेतु उपलब्ध रहना है। इसके लिए उन्हें अपनी पूरी दिनचर्या को व्यवस्थित करना पड़ता है। इस प्रकार उनका जीवन उत्कृष्ट हो जाता है क्योंकि नियमों के पालन से उनका जीवन सध जाता है।

जिसके नित्य कर्मों की नियमावली जितनी सुन्दर होती जाती है, उसका जीवन उतना श्रेष्ठ बनता जाता है जैसे मैं नित्य प्रातःकाल एक निश्चित समय पर जागूँगा, बिना स्नान किए तथा बिना गीताजी के पारायण के कुछ भोजन ग्रहण नहीं करूँगा, बिना स्नान के रसोई नहीं तैयार करूँगी, प्रतिदिन किसी की सहायता करूँगा आदि।

माताजी का अनेक वर्षों पूर्व से प्रतिदिन एक लाख नामजप का नियम है। वे अक्सर दो लाख नामजप भी कर लेती हैं।

2- नैमित्यिक कर्म- किसी निमित्त से कोई कर्म करना इस श्रेणी में आता है। विवाह उत्सव, घर में पुत्र प्राप्ति, पर्व आदि, जन्म-मृत्यु आदि पर जो कर्म किए जाते हैं, वे नैमित्यिक कर्म कहलाते हैं।

अयोध्याकाण्ड में एक अद्भुत वर्णन है। भगवान् श्रीराम के वनवास का समाचार मिला। लक्ष्मण जी को ज्ञात हुआ तो वे भाग कर गए कहा कि भैया! यह बहुत गलत बात है, हमें इसका विरोध करना चाहिए। रामजी ने कहा कि पिताजी की बात का विरोध नहीं किया जाता, हमें तो इस आज्ञा का पालन करना है। लक्ष्मण जी ने भगवान् राम को मना लिया कि मैं आपके साथ चलूँगा। रामजी ने बहुत समझाने का प्रयास किया किन्तु लक्ष्मणजी नहीं माने। तब रामजी ने कहा कि माता की आज्ञा लेकर आओ। फिर हम शीघ्र वन चलेंगे।

मागहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई ॥

अभी तक लक्ष्मणजी क्रोध में थे, रो रहे थे। जैसे ही रामजी ने आज्ञा लेकर आने को कहा, वे बिल्कुल छोटे बच्चे की भाँति प्रफुल्लित हो गए।

मुदित भए सुनि रघुबर बानी। भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी ||

माता की आज्ञा लेने गए और हर्षित भाव से बोले-

हरषित हृदयँ मातु पहिं आए । मनहुँ अन्ध फिरि लोचन पाए ।
जाइ जननि पग नायउ माथा । मनु रघुनन्दन जानकि साथा ।।

लक्ष्मण जी ने माता सुमित्रा को दण्डवत प्रणाम किया।

पूँछे मातु मलिन मन देखी । लखन कही सब कथा बिसेषी ।।

माता सुमित्रा के पूछने पर लक्ष्मण जी ने विस्तार से वनवास की बात बताई। जैसे ही उन्होंने यह समाचार सुना, वे सहम गयीं जैसे छोटी सी हिरनी जङ्गल की आग में फँसकर सहम जाए।

गई सहमि सुनि बचन कठोरा । मृगी देखि दव जनु चहु ओरा ।।

जैसे ही लक्ष्मण ने माता को सहमा हुआ देखा, वे भी विषाद में आ गए-

लखन लखेउ भा अनरथ आजू । एहिं सनेह बस करब अकाजू ।।
मागत बिदा सभय सकुचाहीं । जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं ।।

डर के मारे लक्ष्मण जी विदा नहीं माँग पा रहे हैं कि माता सुनकर ही सहम गयीं तो फिर मुझे विदा कैसे करेंगी? अगर माँ ने अनुमति नहीं दी तो भगवान् श्रीराम लेकर नहीं जाएँगे। लक्ष्मण जी बड़ी कठिनाई में आ गए!

समुझि सुमित्राँ राम सिय रूप सुसीलु सुभाउ ।
नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ ।।

सुमित्रा जी के अद्भुत चरित्र का अधिक वर्णन नहीं हुआ है। एक क्षण के लिए वे अस्थिर हुईं, फिर धैर्य रख कर मीठी वाणी में बोलीं-

धीरजु धरेउ कुअवसर जानी । सहज सुहृद बोली मृदु बानी ।।

तात तुम्हारि मातु बैदेही । पिता रामु सब भाँति सनेही ।।

अवध तहाँ जहँ राम निवासू । तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू ।।

सुमित्रा जी ने धीरज रखकर कहा कि अब तुम्हारी माता भगवती जानकीजी और पिता रामजी हैं। जहाँ रामजी का निवास है, वहीं तुम्हारी अयोध्या है, जैसे जहाँ सूर्य प्रकाश हो, वहीं दिन है।

जौ पै सीय रामु बन जाहीं । अवध तुम्हार काजु कछु नाहिं ।।

माता ने कहा जब रामजी, सीताजी यहाँ नहीं रहे तब तुम्हारा अयोध्या में क्या काम?

गुर पितु मातु बंधु सुर साईं । सेइअहिं सकल प्रान की नाईं ।।

रामु प्रानप्रिय जीवन जी के । स्वारथ रहित सखा सबही कै ।।

"गुरु, माता, पिता, भाई, देवता, स्वामी इन सबकी जी-जान से सेवा करनी चाहिए। रामजी तुम्हे प्राणों से भी प्रिय हैं। तुम्हारे जीवन हैं। तुम्हें वन में कोई कष्ट नही होगा। उन्हें तुम्हारे होते कष्ट नहीं होना चाहिए। तुम्हारे साथ सीताजी और रामजी हैं। वहीं तुम्हारा सुख है। उनकी सेवा करना ताकि उन्हें कोई कष्ट न हो।"

पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें।।

अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू।।

माता कहती हैं कि लक्ष्मण! तुम्हारा जन्म जिस हेतु से हुआ है, तुम उसका लाभ उठाओ।

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥

जीवन में वही माँ धन्य है जिसका पुत्र श्रीराम की भक्ति करता है। मुझसे अधिक धन्य कौन है? तुम्हें तो रामजी की सेवा का अवसर मिला है। माता कहती हैं कि मैं ऐसे पुत्र को प्राप्त करके धन्य हो गई जो तुमने रामजी के चरणों में स्थान प्राप्त कर लिया है।

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥

माता कहती हैं कि "लक्ष्मण! मुझे तो ऐसा लग रहा है कि केवल तुम्हारे भाग्य के कारण रामजी वन जा रहे हैं। तुम उनकी सेवा कर सको जिससे तुम्हारा जीवन धन्य हो जाए, इसलिए तुम्हारे भैया वन जा रहे हैं। माता ने कहा कि तुम हर प्रकार से रामजी और सीताजी की सेवा करना।

सकल सुकृत कर बड़ फल एहू | राम सिय पद सहज सनेहू ||

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥

स्वप्नावस्था में भी हम राग, रोष, ईर्ष्या, मद, मोह आदि के वश में नहीं आवें। सब प्रकार के विकारों का त्याग करना और मन, वचन तथा कर्म से सीता-रामजी की सेवा करना।

माँ अपने पुत्र को चौदह वर्ष के लिए वन में भेज रही है कि बड़े भाई और भाभी की सेवा करना, यह नैमित्यिक कर्म है। धन्य हैं माता सुमित्रा! उन्होंने यह नहीं सोचा कि मैं माँ हूँ, कैसे अपने पुत्र को वन में भेज दूँ? लक्ष्मणजी ने तो अपना नैमित्यिक कर्म किया, लेकिन माता सुमित्रा का स्थान उनसे भी ऊँचा हो जाता है जिन्होंने अपने पुत्र को चौदह वर्ष के लिए वन में भेज दिया कि जहाँ रामजी हैं वहीं अयोध्या है।

पूज्य मोरारी बापू जी ने एक बार अद्‌भुत मानस-सुमित्रा कथा कही थी। उन्होंने सुमित्रा जी के चरित्र का बहुत विस्तार से वर्णन किया है।

मान लीजिये हम दर्शन के लिए मन्दिर जा रहे हैं और मार्ग में किसी को घायल अवस्था में देखते हैं। उस समय हमें नित्यकर्म को छोड़कर तत्काल नैमित्यिक कर्म करना चाहिए तथा उस व्यक्ति को अस्पताल पहुँचाना चाहिए।

3. काम्य कर्म- कामना की पूर्ति के लिए किए गए कर्म काम्य कर्म कहलाते हैं। इष्ट (इच्छित) की प्राप्ति, अनिष्ट की निवृत्ति अर्थात् मुझे जो चाहिए, वह मुझे मिल जाए और जो मुझे नहीं चाहिए, वह चला जाए। यह काम्य कर्म है।

दशरथ जी पुत्र की कामना से वशिष्ठ मुनि के पास गए और कहा-

एक बार भूपति मन माहीं। भै गलानि मोरें सुत नाहीं॥

गुरु गृह गयउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि बिनय बिसाला॥

वशिष्ठ मुनि ने शृङ्गी ऋषि को बुलाया-

सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा॥

दशरथजी ने पुत्र-कामेष्टि यज्ञ किया। यह काम्य कर्म है। सांसारिक कामना की पूर्ति के लिए किए जाने वाले सभी कर्म काम्य कर्म हैं।

4. प्रायश्चित कर्म- किसी भी भूल के लिए प्रायश्चित करना। आजकल इसका चलन बहुत कम हो गया है। अब से बीस वर्ष पहले तक की पीढ़ी में प्रायश्चित करने का विधान मिलता था। घर में चूहा-बिल्ली मर जाते थे तो उसके निमित्त दान किया जाता था। ये बड़े आवश्यक कर्म होते हैं, इन कर्मों को करने से अगले जन्म में इन पापों को भुगतना नहीं पड़ता है।
किसी भी भूल का प्रायश्चित कर्म करने के कई उपाय हैं- मौन रहना, दान-अनुष्ठान करना, पाठ करना, जप करना, ध्यान करना, भोजन का त्याग, अपनी प्रिय वस्तु का त्याग इत्यादि।

गाँधीजी ने वर्ष उन्नीस सौ बत्तीस में विदेशी वस्त्रों के त्याग के लिए आह्वान किया। इस आह्वान की गूँज इतनी जबरदस्त थी कि पूरे देश में लाखों लोगों ने अपने विदेशी वस्त्रों की होली जलाई। प्रातःकाल जब गाँधी जी भ्रमण के लिए निकले तो उन्होंने देखा कि बहुत सारे लोगों के तन पर वस्त्र ही नहीं हैं। लोगों ने बताया कि जिनके पास सारे विदेशी वस्त्र थे, उनको जला दिया। अब वे निर्वस्त्र घूम रहे हैं तो गाँधीजी को बहुत पश्चात्ताप हुआ। जीवन भर के लिए उन्होंने वस्त्रों का त्याग कर केवल आधी धोती में निर्वाह करने का प्रण किया। उन्होंने इस बात के लिए इतना बड़ा प्रायश्चित जीवन भर किया। वर्ष उन्नीस सौ तैंतीस में गाँधीजी गोल मेज़ सम्मेलन के लिए ठिठुरती सर्दी में भी वही आधी धोती में ब्रिटेन गए। लोगों ने बहुत कहा कि कोट पहन लें पर वे माने नहीं। पूरा जीवन आधी धोती में ही रहे। तिलक जी ने पूछा-

केवल आपके वस्त्र त्यागने से कितने लोगों को वस्त्र मिल जाएँगे?

इस पर गाँधी जी ने कहा-

एक को भी नहीं, पर इससे मेरी आत्मा का क्लेश मिटेगा और जिनके वस्त्र मेरे कारण चले गए, उनका दुःख अवश्य कम हो

जाएगा।

यह प्रायश्चित कर्म है। मेरे कारण अनिष्ट हुआ, बुरा हुआ, किसी के साथ गलत हो जाए उस पर यह प्रायश्चित कर्म किए जाते हैं। छोटे-छोटे दण्ड जैसे एक समय का भोजन छोड़कर, चुप रह कर, अपनी आदत छोड़ कर, कुछ दिन के लिए मीठा छोड़ कर, जो भी प्रिय है, उसका कुछ समय के लिए त्याग कर प्रायश्चित कर्म किए जाते हैं।

5. **आवश्यक कर्म-** जीवन-यापन के लिए हम जो भी कर्म करते हैं, जैसे खाना, सोना, स्नान करना, आजीविका कमाना, व्यापार करना, इत्यादि सभी आवश्यक कर्म हैं।

एक राजा था। उसे ज्ञात हुआ कि पड़ोसी राज्य में एक गुणी राजमिस्त्री है जो अत्यन्त सुन्दर घर बनाता है। राजा ने उसे बुलवाया और कहा कि आप मेरे राज्य की भूमि पर सुन्दर घर बना दीजिये। दो वर्ष में उसने सैकड़ों घर बनाए। राजा उसके काम से बड़े प्रसन्न हुए और उसे पारिश्रमिक दिया। वह वापस जाना चाहता था तो राजा ने कहा कि तुम जाना चाहते हो, वह तो ठीक है, लेकिन जाने से पहले मेरे महल के पीछे बगीचे में एक सुन्दर सा घर बना कर जाओ जिसके लिए तुम्हें जो भी चाहिए, वह मिलेगा। उसे अपने घर जाने की तीव्र इच्छा थी पर राजा की आज्ञा का सम्मान करते हुए उसने बड़े बेमन से एक सप्ताह में एक साधारण घर बना दिया। राजा ने कहा कि जाओ अपने परिवार के साथ वहाँ रहो। वह बहुत पछताया कि राजा ने तो खुला आदेश दिया था कि जैसा चाहो वैसा बनाओ। मैंने यह क्या कर दिया?

अपना आवश्यक कर्म पूरी निष्ठा से करना चाहिए। जिसने जितनी निष्ठा से अपने आवश्यक कर्मों को किया हो, उसका जीवन उतना उन्नत होता है।

18.3

त्याज्यं(न्) दोषवदित्येके, कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञदानतपःकर्म, न त्याज्यमिति चापरे॥18.3॥

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि अर्जुन! कुछ विद्वान ऐसा भी कहते हैं कि कर्मफल दोषयुक्त होता है, इसलिए त्याज्य है, पर कुछ यह भी कहते हैं कि तप, दान तथा यज्ञ का त्याग नहीं कर सकते।

श्रीभगवान् अभी मत बता रहे हैं। इसे हम चार श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं-

अ- काम्य कर्मों का त्याग करो। इसे संन्यास कहते हैं। साधु कभी कामना पूर्ति के लिए कोई कर्म नहीं करते।

ब- सब कर्मों के फल की इच्छा का त्याग। मैं कर्म तो करूँगा पर उसके प्रतिफल में क्या प्राप्त होगा, उसकी आसक्ति नहीं करूँगा।

स- दोषयुक्त कर्मों का त्याग।

द- यज्ञ, दान और तप का त्याग कभी नहीं करना चाहिए।

इसमें अ और स संन्यास है और ब तथा द त्याग है।

18.4

निश्चयं(म्) शृणु मे तत्र, त्यागे भरतसत्तम।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र, त्रिविधः(स्) सम्प्रकीर्तितः॥18.4॥

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! (तू) संन्यास और त्याग - इन दोनों में से पहले त्याग के विषय में मेरा निश्चय सुन; क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ ! त्याग तीन प्रकार का कहा गया है।

विवेचन- श्रीभगवान् ने अर्जुन से कहा-

"हे पुरुष-व्याघ्र!

अर्थात् पुरुषों में सिंह, शेर, अत्यन्त बलवान, श्रेष्ठतम पुरुष!

हे भरतसत्तम!

अर्थात् भरतवंशी के सत्त्व! तुम संन्यास और त्याग के विषय में पहले त्याग के बारे में मुझसे सुनो। त्याग सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकार का होता है। श्रीभगवान् ने अर्जुन को त्याग की विस्तृत व्याख्या दी।

18.5

यज्ञदानतपःकर्म, न त्याज्यं(ङ्) कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं(न्) तपश्चैव, पावनानि मनीषिणाम्॥18.5॥

यज्ञ, दान और तपरूप कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिये, (प्रत्युत) उनको तो करना ही चाहिये (क्योंकि) यज्ञ, दान और तप - ये तीनों ही (कर्म) मनीषियों को पवित्र करनेवाले हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि त्यागने की बात छोड़ो, तुम अपना सारा ध्यान करने योग्य बात की ओर करो। अर्जुन! यज्ञ, दान, तप- ये कर्म त्याग करने योग्य नहीं है। आवश्यक कर्म बुद्धिमान पुरुषों को पवित्र करने वाले हैं। जो तुम बार-बार भागने की बात कर रहे हो न, वह छोड़ो।

मैं डॉक्टर के यहाँ पहुँचा। मेरे पास कुछ समय है। वहाँ पर एक ज्यादा गम्भीर रोगी दिखा तो मैंने उनसे कहा कि पहले आप दिखा दें। अपने नम्बर का त्याग, यह यज्ञ है। ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो कथा, प्रवचन आदि में जाकर कुर्सी पर बैठ जाते हैं। कारण जैसे ही कोई वृद्ध व्यक्ति आएगा, मैं उसे कुर्सी देकर नीचे बैठ जाऊँगा, यह विचार अति उत्तम है। घर में आए छोटे भाई के बालक को दो आम ज्यादा दे दिए। किसी को बतलाना नहीं, यह यज्ञ हो गया। छोटी-छोटी बातों में त्याग करने की आदत बन जाए। दूसरे के अधिकार की रक्षा तथा अपने अधिकार का त्याग करना चाहिए, जबकि हम उल्टा करते हैं। इसी से सारा झञ्झट होता है।

गुरु नानकदेव जी कहते हैं-

"तीरथ जप और दान करें। मन में करे गुमान।

नानक निष्फल जात है जो कुन्जर स्नान।।

कुञ्जर हाथी को कहते हैं। हाथी बहुत देर तक स्नान करता है और बाहर आकर अपने शरीर की नमी को बनाए रखने के लिए अपने ऊपर मिट्टी डाल लेता है। इतना स्नान किया और मिट्टी डाल ली तो स्नान तो बेकार हो गया इसलिए तीर्थ, जप और दान, इनका गुमान करने से यह व्यर्थ हो जाते हैं। ये सब कभी-कभी करने वाले को अहङ्कार हो जाता है।

श्रीभगवान् किसी की बात काटते नहीं हैं। अपनी बात जोर देकर कहते हैं कि सीखो। श्रीभगवान् उत्तम वक्ता हैं, चतुर श्रोता के बाद में क्या प्रश्न आने वाले हैं, उसके उत्तर पहले ही दे देते हैं।

18.6

एतान्यपि तु कर्माणि, सङ्गं (न्) त्यक्त्वा फलानि च।

कर्तव्यानीति मे पार्थ, निश्चितं (म्) मतमुत्तमम्॥18.6॥

हे पार्थ ! इन (यज्ञ, दान और तपरूप) कर्मों को तथा (दूसरे) भी (कर्मों को) आसक्ति और फलों की इच्छा का त्याग करके करना चाहिये - यह मेरा निश्चित किया हुआ उत्तम मत है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि हे पार्थ! इन यज्ञ, दान और तपरूप कर्मों को तथा और भी सम्पूर्ण कर्मों को आसक्ति और फलों की इच्छा का त्याग करके करना चाहिये- यह मेरा निश्चित मत है।

सेठ जी जयदयाल गोयन्दका जी के मन में अहङ्कार का लेशमात्र भी नहीं था। एक बार उनसे एक सत्सङ्गी ने पूछा कि जब सत्सङ्गी व्यक्ति आपकी प्रशंसा करते हैं, आपकी ओजस्वी वाणी की प्रशंसा करते हैं, तो क्या आपको अहङ्कार नहीं आता? वे बोले कि अहङ्कार तो नहीं आता, अपितु लगता है कि सामने वाला उदार प्रवृत्ति का है। मेरी कैसी भी बात को सुनकर वह बोलता है कि आज आप बहुत अच्छा बोले हो। यह सद्‌गुण की पराकाष्ठा है।

"निश्चितम् उत्तमम मम"

श्रीभगवान् कह रहे हैं कि यह मेरा निश्चित उत्तम मत है।

इसके साथ ही हरिनाम सङ्कीर्तन के उपरान्त सत्र का समापन हुआ तथा साधकों की जिज्ञासाओं का समाधान किया गया।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता- पलक दीदी
प्रश्न- मन एकाग्रचित्त नहीं हो पाता, इसके लिए कोई उपाय बताईए?
उत्तर- रजोगुण मन की अस्थिरता को बढ़ाता है और सतोगुण मन को स्थिर करता है। आपको इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है कि सुबह उठने के बाद आपने कितना समय सात्त्विक, राजसी और तामसी गुणों का अनुसरण किया। अगर हम अपने रजोगुण और तमोगुण को दबाएँ तो सतोगुण निश्चित रूप से ही बढ़ेगा। श्रीभगवान् ने भी मन की स्थिरता को बढ़ाने के लिए कहा है-

असंशयं(म्) महाबाहो, मनो दुर्निग्रहं(ञ्) चलम्।

अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते॥

यह मन बड़ा चञ्चल है और इसका निग्रह करना भी बड़ा कठिन है। परन्तु हे कुन्तीनन्दन! अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इसका निग्रह किया जाता है। इसके लिए आपको अपने दिन भर की गतिविधियों और अपने आहार और विहार दोनों को नियन्त्रित करना आवश्यक है। अभ्यास को निरन्तर रूप से करने पर यह आवश्यक रूप से सम्भव भी हो पाएगा।

प्रश्नकर्ता- सुभाष भैया
प्रश्न- ऐसा तो सुना है कि कर्मों से हमारा भाग्य बनता है, लेकिन आयु का निर्माण कैसे होता है?
उत्तर- आयु भी हमारे भाग्य का ही एक अभिन्न अङ्ग है और कर्मों से ही हमारी आयु भी तय होती है।

प्रश्नकर्ता- मीना दीदी
प्रश्न- जीवन में नकारात्मकता बढ़ रही है तो इसके लिए हम क्या कर सकते हैं?
उत्तर- जब जीवन में सकारात्मकता की कमी होती है तो नकारात्मकता बढ़ने लगती है। हमें केवल इतना ध्यान रखना है कि हमें अपनी अपेक्षाओं को कम करना है क्योंकि अपेक्षाएँ जितनी अधिक होंगी नकारात्मकता उतनी अधिक होगी और जब अपेक्षाओं को छोड़ते जाएँगे तो नकारात्मकता अपने आप से कम होती जाएगी।

प्रश्नकर्ता- नीरजा दीदी

प्रश्न- तत्त्वज्ञान से क्या भाव है?
उत्तर- किसी भी वस्तु का ज्ञान मौलिकता से जानना ही तत्त्वज्ञान है। इसे एक उदाहरण से समझते हैं। मान लीजिए आपके पास बहुत सुन्दर-सुन्दर सोने के आभूषण हैं जैसे कि कङ्गन, हार और कान की बाली इत्यादि। आप सुनार के पास उन्हें लेकर जाते हैं और उनका मूल्य जानना चाहते हैं। सुनार आपको उन सारे गहनों को बिना देखे ही काँटे पर रखने के लिए बोलता है, क्योंकि सुनार को केवल उसमें कितना शुद्ध सोना है, उसी से भाव है। आभूषण कितना सुन्दर दिखाई दे रहा है, इससे उसका कुछ भी लेना-देना नहीं है। इसी तरह से हम श्रीभगवान् को मन्दिरों में, गीता जी में और इधर-उधर ढूँढते हैं, लेकिन वे तो हमारे भीतर ही हैं। इस तरह से जानना ही तत्त्वज्ञान की बात है।

प्रश्नकर्ता- देवयन्ती दीदी
प्रश्न- जो प्रिय नहीं रहे और छोड़ कर चले गए हैं, उनकी याद से छुटकारा कैसे पा सकते हैं?
उत्तर- आप समय-समय पर अपने पितरों का पूजन कर उनके प्रति अपना सम्मान प्रकट कर सकते हैं, इससे अधिक कुछ और करने की आवश्यकता नहीं है। आपको वे याद आ रहे हैं, इसका कारण यह है कि आप उनका विचार कर रहे हैं, इसलिए उनको भूल नहीं पा रहे हैं। इस संसार को छोड़कर हम सभी को जाना है। कोई पहले चला जाता है और किसी को बाद में जाना है, लेकिन जाना सभी को है तो इसमें इतना अधिक व्यथित होने की आवश्यकता नहीं है। जैसे युधिष्ठिर और यक्ष के संवाद की बात आती है तो यक्ष ने युधिष्ठिर से जो सौ प्रश्न पूछे, उनमें से एक प्रश्न यह भी था कि इस संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य कौन सा है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि जब किसी की मृत्यु हो जाती है तो उसके परिवारजन इतना अधिक विलाप करते हैं जैसे कोई अनहोनी घटना हो गई है और यह नहीं होना चाहिए था, जबकि सबको पता है कि मृत्यु शाश्वत सत्य है। फिर भी इतना अधिक विलाप आश्चर्य की बात है।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||